श्री राम-नन्दिनी ग्रंथमाला का पंचम पुष्प

कर्म विचारे कौन

(बाल नाटक संग्रह)

- राजकुमार शास्त्री

-: प्रकाशक :-

समर्पण

ध्रुवधाम, पो. कूपड़ा, जिला - बांसवाड़ा (राज.)

मो. 91 9414103492

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

दिनांक : 30 अगस्त 2014 (दशलक्षण महापर्व)
वीर निर्वाण संवत् 2540

प्राप्ति स्थान : समर्पण + 91 9414103492

लागत मूल्य : 17 रुपये

पुनः प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 15 रुपये

मुद्रण व्यवस्था : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
एफ-23, सी-5, मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया,
जयपुर, मो. 9928517346

प्रकाशकीय

'समर्पण' द्वारा समर्पित साधर्मियों के सहयोग से अभी तक **'श्री राम-नन्दिनी'** ग्रन्थमाला के अंतर्गत श्री कानजीस्वामी के प्रवचन साहित्य का अनुशीलन एवं बढ़ते भगवान-घटते भक्त (तीन संस्करण) प्रकाशित किये जा चुके हैं।

इस वर्ष राजकुमार शास्त्री द्वारा लिखित 'विलक्षण-दशलक्षण' एवं 'बढ़ै सो पावे' निबंध संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। अब 'कर्म विचारे कौन?' यह नाटक/एकांकी संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है।

पाठकों ने उक्त पुस्तकों को प्रकाशन पूर्व ही पसंद किया है जो कि इन पुस्तकों की विषयवस्तु की आवश्यकता की ओर इंगित करता है।

'समर्पण' अनुपलब्ध या नवोदित लेखकों के स्तरीय साहित्य प्रकाशन की भावना रखता है, अगर आपके पास ऐसा कोई साहित्य हो तो हमें जरूर उपलब्ध करवावें, हम आपके ही सहयोग से यह सम्पन्न कर गौरवान्वित अनुभव करेंगे। महावीर जयन्ती के अवसर पर भगवान महावीर से संबंधित कविताओं के संकलन किया जाना प्रस्तावित है, आप स्वरचित या संकलित कवितायें उपलब्ध कराने का श्रम करावें।

अंत में हम लेखक, ग्रन्थमाला संचालक, अर्थ सहयोग करने वाले साधर्मियों एवं बुद्धिमान् पाठकों के प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हैं, जिनके सहयोग से यह कार्य सम्पन्न हो रहा है।

सुन्दर मुद्रण के लिए श्री दिनेश शास्त्री, देशना कम्प्यूटर्स जयपुर का धन्यवाद ।

निवेदक

समर्पण परिवार

मूल्य कम करने में प्राप्त सहयोग -

११००/ रुपये श्रीमती सुनीता ध.प. श्री महेश जैन, ब्यावर

११००/ रुपये श्री चांदमल, ललितकुमार किकावत, लूणदा

मन की बात

बच्चे ही नहीं बड़े भी पढ़ने-सुनने की अपेक्षा देखने से अधिक व जल्दी सीखते हैं, इसीलिये नाट्य विधा सदा से ही सबकी पसन्द रही है। आज तो चित्रपट (फिल्म) के माध्यम से उसकी सार्थकता सबके समक्ष है।

पाठशाला में भी बच्चों द्वारा छोटे-छोटे संवादों के माध्यम से जिनागम के सिद्धान्तों को पिरोकर प्रस्तुत करने के सार्थक प्रयास अनेक लेखकों द्वारा किये जा रहे हैं।

मैं 1992 में जब कोटा स्थानान्तरित होकर पहुँचा; तब 1993 से ही बाबूजी की प्रेरणा व मार्गदर्शन तथा डॉ. मानमलजी के संयोजकत्व में जैनदर्शन व्यक्तित्व विकास शिविरों का शुभारंभ हुआ, जो आज तक सुचारुरूप से संचालित हो रहे हैं।

शिविरों के समापन के अवसर पर उनकी भावना रहती थी कि प्रतिवर्ष छोटा, नया व सार्थक संवाद प्रस्तुत किया जाना चाहिए, जिससे पाठशाला के बच्चों की प्रतिभा का पता चल सके एवं समाज में कुछ सन्देश भी दिया जा सके।

इसी भावना से मैंने प्रतिवर्ष नये संवाद लिखे, जिनमें कला पक्ष की ओर कम ध्यान दिया गया, परन्तु भावपक्ष ही मुख्य रखा गया। उन संवादों को एकत्र कर प्रकाशित करने की भावना कुछ समय से चल रही थी, जो अब पूर्ण हो रही है।

प्रस्तुत संग्रह में 'कर्म विचारे कौन?' नाटक, राजसभा व न्यायालय दो रूपों में मंचित किया जा सकता है, मैंने दोनों रूपों में ही अलग-अलग स्थानों पर मंचित कराया है, अतः उस नाटक को दोनों रूपों में ही संकलित किया है, निमित्त-उपादान संवाद में संक्षेप में निमित्त उपादान का ज्ञान, भेदविज्ञान नाटिका में समयसार की गाथा 35 की टीका में दिये

गये उदाहरण को नाट्य शैली में प्रस्तुत किया है।

नेता कौन? नाटक में छः द्रव्यों का परिचय रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है एवं अन्तिम भगवान महावीर और उनकी अहिंसा में भगवान महावीर का संक्षिप्त परिचय व अहिंसा के स्वरूप को स्पष्ट किया है।

मैं लेखक नहीं हूँ, फिर भी लिखने का काम कर रहा हूँ अतः कलापक्ष व भावपक्ष दोनों में ही त्रुटियाँ होने की पूरी संभावना है, जिनके भी ज्ञान में त्रुटियाँ आवें तो सूचित कीजियेगा। आप स्वयं भी सुधार कर या परिवर्तन/परिवर्धन कर इनका तत्त्वप्रचार में उपयोग कर सकते हैं।

यदि दशलक्षण पर्व या अन्य अवसरों पर ये संवाद मंचित होकर कुछ ज्ञानवर्धन में सहयोगी बन सके तो निश्चित ही परिश्रम सार्थक होगा।

समर्पण प्रकाशन के लिए हार्दिक धन्यवाद, जिन्होंने इसे प्रकाशित कराके मेरा उत्साहवर्धन किया है।

पल-पल जीवन बीता जाता है, बीता पल नहीं वापस आता है।
क्या तूने खोया है? क्या तूने पाया है? कर ले तू चिन्तन सही।
क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी, फिर भी देखो पर्यायों में रुली टिक।
मोह लोभ में तू भरमाया है, सपनों का संसार सजाया है।
ये सब छलावा है, ये सब भुलावा है, कर ले तू चिंतन सही।
क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी....।।१।।
देव-शास्त्र-गुरु शरण मिली तुझको, जिनवाणी की राह मिली हमको।
अब भी न सम्हला गर, मौका ये चूका गर
भव -भव में पछतायेगा, क्योंकि आत्मा अनंत गुणों का धनी...

- बाबूलाल पाटनी, कोलकता

1

कर्म विचारे कौन ?

(राज दरबार लगा हुआ है, मंत्रीगण, दरबारी बैठे हुए हैं,
महाराजा श्रेणिक का दरबार में प्रवेश।)

द्वारपाल – (बुलंद आवाज पर गति धीरे-धीरे) सावधान- परम पराक्रमी, स्याद्वाद विद्यालंकृत महाराजा श्रेणिक पधार रहे हैं।

(सभी खड़े होकर, महाराजा का अभिवादन करते हैं, महाराजा सिंहासन पर बैठकर सभी को बैठने का इशारा करते हैं)

महाराजा – हे महामंत्री ! अपने राज्य में सर्व कुशलता तो है या नहीं ?

महामंत्री – महाराज ! आप जैसे न्यायप्रिय, धर्मप्रिय, अनुशासन प्रिय, प्रजावत्सल महाराज के शासन में कुशलता न होने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्रजाजन आनंद सहित अपने-अपने धर्माचरण को करते हुए, व्यापारादि कार्य अत्यन्त निर्भय होकर कर रहे हैं।

महाराज – (प्रसन्नतापूर्वक) हे महामंत्री ! यह समाचार सुनकर

मन प्रसन्न हुआ। हे सेनापति! अपनी राज्य की सीमाओं के बारे में क्या समाचार हैं ?

सेनापति – महाराज! आपके पराक्रम को देखते हुए पड़ोसी राज्य अपने तक ही सीमित हैं, कोई अपने राज्य की ओर आँख उठाकर भी नहीं देख सकता। सेना 24 घन्टे सावधान रहती है। राज्य के अन्दर भी डाकू–लुटेरों का अभाव है। प्रजा अत्यन्त शान्ति के साथ आपके शासन में लौकिक–लोकोत्तर कार्यों को सम्पन्न कर रहे हैं।

महाराज – सेनापति! राज्य की शांति हेतु आपके द्वारा किये गये प्रयासों के बारे में सुनकर हम खुश हुए। हे महामंत्री! आज की इस सभा में कोई किसी का सताया हुआ दु:खी प्राणी हो, किसी पर अन्याय किया गया हो या फिर किसी भी कारण से असन्तुष्ट हो उसे प्रस्तुत किया जावे, ताकि हम उसकी समस्या का निराकरण कर उसे सन्तुष्ट कर सकें।

महामंत्री – जो आज्ञा महाराज! आज जीवराज व कर्म के विवाद को प्रस्तुत किया जायेगा। प्रहरी! उन्हें प्रस्तुत किया जाये।

प्रहरी – जीवराज हाजिर होऽऽऽ

कर्म – वल्द पुद्गल हाजिर होऽऽऽ

(जीव व कर्म सपरिवार दरबार में प्रवेश करते हुए महाराज के समक्ष अभिवादन करते हैं)

महाराज – विधि मंत्री ! इन दोनों के बीच विवाद का कारण क्या है? पेश किया जाये।

विधि मंत्री – जो आज्ञा महाराज ! महाराज जीवराज का कर्मराज पर आरोप है कि यह कर्म अन्यायी–अत्याचारी–लुटेरा है। यह अनादिकाल से जीवराज को चार गतियों में घुमा–घुमा कर दु:खी कर रहा है, इस कर्म ने जीवराज के ज्ञानधन को चुरा लिया है। जीवराज का कर्मराज पर यह भी आरोप है कि ये कर्म उसे जानने, सुखी होने, सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट कर मोक्षमार्ग प्राप्त करने से रोकता है।

जीवराज की आपसे न्याय करने की प्रार्थना है।

महाराज – अरे ! इतना अन्यायी भी क्या कोई हमारे राज्य में हो सकता है ? सेनापति इन आरोपों के संबंध में कर्म का क्या कहना है ? आप जरा संक्षेप में हमें बताइये।

सेनापति – जो आज्ञा महाराज ! हे राजन् ! कर्मराज का कहना है कि मैं निर्दोष हूँ। मैं क्यों किसी को दु:खी करूँगा, मेरा जीव ने कुछ बिगाड़ा तो है नहीं जो मैं उसे परेशान करूँगा। जीव स्वयं ही अपने गुणों को भूलकर पुरुषार्थ हीनता से दु:खी हो रहा है और आरोप मेरे ऊपर लगा रहा है।

महाराज – मामला बड़ा संगीन है। परन्तु सभी पक्षों को देख–सुनकर दूध का दूध और पानी का पानी

किया जायेगा। हे जीवराज! आपको कर्म से क्या शिकायत है ?

जीवराज – (रोते हुए) सरकार! मैं लुट गया, बरबाद हो गया। भव विकट वन मैं कर्म बैरी ज्ञानधन मेरो हर्यो।' लूट लिया सरकार इस दुष्ट कर्म बैरी ने लूट लिया। महाराज न्याय कीजिये। इस कर्म को फांसी की सजा दीजिये।

महाराज – (सान्त्वना देते हुए) जीवराज घबराओ नहीं। न्याय अवश्य होगा। जीवराज यह बताओ कि जब कर्म ने ज्ञानधन लूटा, तब तुम क्या कर रहे थे? तुमने उसे रोका क्यों नहीं ? तुम सावधान क्यों नहीं हुए?

जीवराज – (हाथ जोड़ते कर) क्षमा करें महाराज! अकेला ही हूँ मैं, कर्म सब आये सिमट के।'' ये आठ मैं अकेला, इनकी 148 की गैंग है महाराज! मैं इनसे कैसे मुकाबला कर सकता था?

कर्म – महाराज! मैंने तो इसके ज्ञान को देखा ही नहीं, तब चुराने की तो बात ही बेकार है। यह मेरे और मेरे परिवार पर झूठा ही आरोप लगा रहा है।

जीवराज – इसी ने चुराया है सरकार। अब यह झूठ भी बोल रहा है। इसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाये।

कर्म – मैंने नहीं चुराया महाराज। मुझ पर झूठा आरोप लगाकर यह मेरी मानहानि कर रहा है।

जीवराज – (गुस्से में) अरे कर्म! मेरे ज्ञान को चुराकर, भव-भव में दु:ख देकर, मुझे बरबाद कर अब ईमानदार बन रहा है।

महाराज – (गुस्से में) शान्त हो जाइये! शान्त हो जाइये!

जीवराज (रोते हुए)– ''मैं प्रभु दीन अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
किये बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे।।''

दया करके मेरा ज्ञानधन मुझे दिला दीजिये, मुझे इसके बंधन से छुड़वा दीजिये महाराज।

महाराज – ठीक है, ठीक है; यहाँ सभी के साथ न्याय होता है। किसी के साथ अन्याय नहीं होगा।

अच्छा श्रीमान् कर्म! आप यह बताइये कि आप कर्म के साथ कब से रह रहे हैं ?

कर्म – महाराज! मैं तो अनादिकाल से जीव के साथ रह रहा हूँ।

महाराज – क्या आप जीव के साथ संसार में सब जगह रहते हो?

कर्म – जी सरकार।

महाराज – आप जीव के साथ नरक में जाकर बहुत दु:ख भोगते होंगे ?

कर्म – दु:ख! (आश्चर्य व्यक्त करते हुए)मुझे किस बात का दु:ख, महाराज। दु:ख तो जीव ही भोगता होगा।

महाराज – अच्छा तो जीव के साथ स्वर्ग में जाकर आनंद तो लेते होगे?

कर्म – (विस्मय से) आनंद! यह आनंद किस चिड़िया का नाम है। ये सुख-दु:ख स्वर्ग-नरक क्या हैं ? मुझे कुछ नहीं पता, महाराज।

महाराज – अच्छा ये बताओ! यह जो आपके सामने खड़ा है यह कौन है ?

कर्म – सरकार! मुझे अपना ही पता नहीं है कि मैं कौन हूँ, तो मैं ये कैसे बताऊँ कि यह कौन है ?

महाराज – अच्छा जीवराज! आपको तो पता ही होगा कि ये सामने कौन है?

जीवराज – अरे महाराज! यही तो दुष्ट कर्म हैं, पुद्गल होते हुए भी मुझे घुमा-घुमा कर 'कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावै, सुर-नर पशु गति मांहिं बहुविधि नाच नचावै। बिन कारण जग बंधु, बहुविधि वैर लियो जी।' इन्हें तो कभी नहीं भूल सकता सरकार।

महाराज – अरे! आप तो इन्हें अच्छी तरह जानते हैं। तो फिर अब आप ही बताइये कि आप कौन हैं ?

जीवराज (रोते हुए)– मैं महाराज ? मैं तो जीव हूँ, दुखिया हूँ, चारों गतियों में भटक रहा हूँ। परेशान हूँ महाराज।

महाराज – अच्छा तो जीवराज! जरा अब आप यह भी बतावें कि नरक में आपको क्या-क्या कष्ट प्राप्त हुये?

जीवराज – हे महाराज! कुछ मत पूछिये। (रोते हुए) इन कर्मों ने मुझे जब नरक में पटका महाराज, तब – 'तहाँ भूमि परसत दु:ख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहीं तिसो।'

'तहाँ राध श्रोणित वाहिनी, कृमि कुल कलित देह दाहिनी।' (पंक्तियों को गाकर नहीं, संवाद की तरह धीरे-धीरे पढ़ा जावे।) और सरकार –

''सिंधु नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूंद न लहाय।
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटे न भूख कणा न लहाय।।''

सरकार इस दुष्ट कर्म ने एक-एक बूँद पानी और एक-एक दाने को तरसाया। महाराज अब आपसे ही न्याय की आशा है –

''अब आयो तुम पास सुनि जिन सुजस तिहारो।
नीति-निपुण जगराय कीजे न्याय हमारो।।''

महाराज – (मुस्कराते हुए) अरे भाई जीवराज! तो स्वर्ग का आनंद भी तो ये कर्म ही दिलाते होंगे। उनके बारे में भी तो कुछ बताओ।

जीव – आनंद! अरे कहाँ महाराज! जैसे-तैसे बड़ी मेहनत से, तप-त्याग के कष्ट सहन करके स्वर्ग पहुँचता हूँ, थोड़ा सा मजा आता है कि ये दुष्ट (कर्म की तरफ इसारा करके, गुस्से में देखते हुए) वहाँ भी आ टपकता है और समय हो गया की घंटी बजा देता है। वहाँ से मुझे टपका कर स्थावरकाय पेड़ पौधे में रहने की सजा दे देता है। महाराज! मजा कम सजा ज्यादा है। ऐसे दुष्ट कर्म को महाराज कठोर सजा देने की कृपा करें।

महाराज – अच्छा जीवराज! ये कर्म लुटेरे हैं, चोर हैं, इन्होंने तुम्हें स्वर्ग में घुमाया, नरक में रुलाया, दु:खी किया, ये तुम्हें कैसे पता है? जबकि इन कर्मों को तो कुछ पता ही नहीं है।

जीवराज – अरे सरकार! ये सब, कर्म कैसे जान सकते हैं, यह तो निरे मूर्ख हैं, जड़ हैं। (अहंकार से)मैं तो यह सब अपने ज्ञान से जानता हूँ । इस विश्व में एकमात्र मैं ही तो समझदार हूँ।

महाराज – (गुस्से में) श्रीमान् जीवराज! अभी आपने स्वयं कहा कि मैं अपने ज्ञान से जानता हूँ। इसका मतलब तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे पास ही है और जबरदस्ती तुम कर्म पर आरोप लगा रहे हो कि इसने मेरा ज्ञानधन चुरा लिया। आप झूठ बोल रहे हो। सजा आपको ही मिलेगी।

जीवराज – अरे नहीं–नहीं महाराज! मैं तो लोकालोक को जानना चाहता हूँ, परन्तु ये कर्मराज के दुष्ट बेटे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी मुझे पूर्ण ज्ञान ही नहीं होने देते। ये अंतराय तो और अधिक खतरनाक है मैं कुछ लेना–देना, भोगना चाहता हूँ वहीं टांग अड़ा देता है। ये छोटा बेटा वेदनीय तो पक्का बदमाश है, जब देखो कभी पेट दर्द, कभी सिर दर्द, कभी ब्लड प्रेशर तो कभी शुगर, कैंसर जैसी बीमारियों से जीना हराम कर देता है। ये सब ही मेरे दुःख के कारण हैं; महाराज! न्याय कीजिये इनसे छुटकारा दिलाइये।

महाराज – अच्छा जीवराज! आप अपने पक्ष में कोई गवाह पेश करना चाहेंगे?

जीवराज – जी महाराज! मैं अपने पक्ष में श्रीमान् व्यवहारचन्द को प्रस्तुत करना चाहूँगा।

महाराज – व्यवहारचन्द को हाजिर किया जाये।

प्रहरी – व्यवहारचन्द हाजिर होऽऽऽ

(व्यवहारचन्द हाजिर होता है)

महाराज – क्यों व्यवहारचन्द आपने कर्म को जीव के लिए सुखी–दुःखी करते एवं संसार परिभ्रमण कराते देखा है।

व्यवहारचन्द – जी महाराज! अरे यह कर्म ही जीव को अनादिकाल

से दु:खी किये हुए हैं, इसका ये ज्ञानावरण नाम का बेटा इस जीव को सर्वज्ञ नहीं होने देता, जितना जानता है, उसमें भी भ्रम पैदा कर देता है। इसका सबसे खतरनाक बेटा मोहनीय यह तो इसे मोहित करके मोक्षमार्ग में कदम ही नहीं रखने देता, वस्तुस्वरूप ही नहीं समझने देता। किसी से राग किसी से द्वेष कराकर नये कर्म बंध कराके संसार में घुमाता है।

जीवराज- (प्रसन्न होते हुए) बिल्कुल सही कह रहा है महाराज।

व्यवहारचन्द- इस जीव को यही कर्म चारों गतियों में पटक-पटक कर रुलाता है, दु:खी करता है। मैं तो 24 घन्टे देखता हूँ, कि ये कर्म सारे परिवार सहित जीव को बाँधकर कष्ट देते हैं, ये कर्म ही जीव को जगाते, उठाते, सुलाते हैं।

महाराज - कर्मराज! क्या आप भी अपने पक्ष में किसी पक्षकार को प्रस्तुत करना चाहेंगे?

कर्म - हाँ महाराज! मैं अपने पक्ष में नीर-क्षीर विवेकी श्रीमान् निश्चयकुमार को प्रस्तुत करना चाहूँगा।

महाराज - निश्चयकुमार को हाजिर किया जावे।

प्रहरी - निश्चयकुमार हाजिर होऽऽऽ (निश्चयकुमार नमस्कार करते हुए हाजिर होता है)

महाराज – श्रीमान् निश्चयकुमार! आप जीव और कर्म के इस विवाद के संबंध में कुछ जानते हों तो अपना पक्ष प्रस्तुत करें।

निश्चयकुमार – हे न्यायप्रिय राजन्! मैं इन दोनों के विवाद के संबंध में जो कुछ जानता हूँ, वह ज्यों का त्यों बतला रहा हूँ। महाराज ! जीव का आरोप निराधार है। जिनवाणी का कथन है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जीव स्वयं ही दुकान, व्यापार, परिवार से समय नहीं निकालता, व्यापारिक कार्यों में व्यस्त रहकर आर्त-रौद्र परिणाम करके आकुलित होता है। अपनी अज्ञानता से स्वयं ही अपने सर्वज्ञ स्वभाव व अनंत सामर्थ्य को भूलकर अन्य पदार्थों को अच्छा-बुरा मानकर मोह-राग-द्वेष करके जन्म-मरण कर रहा है, और अपना दोष कर्म के ऊपर लगा रहा है। कर्म निर्दोष हैं, महाराज।

महामंत्री – हे महाराज ! ये व्यवहारचन्द एवं निश्चयकुमार ने जो जिनवाणी के अनुसार तर्क प्रस्तुत किये हैं, वे परस्पर में विरोधी लग रहे हैं। परन्तु सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा किये गये कथन विरोधी तो हो नहीं सकते अत: इन कथनों के सही स्वरूप को समझने के लिए मैं महाराज से सादर निवेदन करूँगा कि

आपकी राजसभा की शोभा बढ़ाने वाले ज्ञानवृद्ध पण्डित स्याद्वाद शास्त्री से परामर्श करके ही निर्णय किया जाये।

महाराज – महामंत्रीजी! आपका यह सुझाव स्वागत योग्य है। पण्डित स्याद्वाद शास्त्रीजी आज तक सभी समस्याओं का समाधान करते आये हैं, मैं उनसे निवेदन करूँगा कि व्यवहारचन्द व निश्चय कुमार द्वारा किये कथनों का स्याद्वाद विद्या के आधार से समाधान प्रस्तुत करें ताकि इस विवाद का हल निकालकर न्याय किया जा सके।

पण्डितजी (नमस्कार करके) – हे न्यायप्रिय राजन्! जैन संविधान में किसी भी वस्तु के संबंध में कथन करने के दो प्रकार हैं। जब पर्याय अपेक्षा या संयोगों या निमित्तों की अपेक्षा कथन करते हैं तो जिस प्रकार व्यवहारचन्द ने कहा है कि कर्म ही जीव को बांधता है, कर्म ही रुलाता, सुलाता, सुखी-दु:खी करता है, ज्ञान प्रकट नहीं होने देता, संसार में भ्रमण कराता है। ऐसा ही कहा जाता है।

पर यह सब औपचारिक कथन हैं, जब जीव दु:खी हुआ हुआ उस समय उनकी उपस्थिति का ज्ञान कराने वाले कथन हैं।

सेनापति – हे आगमसेवी पण्डितजी! यह तो व्यवहारचन्द

की बात हुई पर निश्चयकुमार ने इन सब बातों का निषेध किस आधार से किया है ?

पण्डितजी – हे तत्त्वजिज्ञासु महोदय! निश्चयकुमार ने वस्तु के सत्य स्वरूप का कथन किया है, जब जीव स्वयं अपनी पुरुषार्थ हीनता द्वारा अपनी ज्ञानादि अनन्त शक्तियों को भूलकर परपदार्थों में मोह–राग–द्वेष करता है; तब जीव को आकुलता होती है, दुःखी होता है, कोई परद्रव्य या कर्म जीव को दुःखी नहीं कराते। जड़ कर्म जीवराज के ज्ञानधनरूपी संपत्ति का अपहरण नहीं कर सकते। क्योंकि सभी द्रव्य अपने स्वचतुष्टय में ही रहते हैं।

महामंत्री – हे पण्डितप्रवर! व्यवहारचन्द एवं निश्चयकुमार के कथनों में इतना अन्तर क्यों है ?

पण्डितजी – हे निकट भव्य! व्यवहारचन्द संयोग देखकर कथन कर रहे हैं, जिस तरह कमल का पत्ता जल में होने से जल में डूबा हुआ, छुआ हुआ दिखता है इसलिए वह जल से छुआ हुआ है ऐसा कहा जा सकता है। परन्तु निश्चयकुमार वस्तु स्वरूप को देखकर कथन करते हैं, वह वस्तुस्वभाव को देखते हैं जैसे – उसी कमल के पत्ते को स्वभाव से देखा जाये तो वह पानी को छूता ही नहीं, वह पानी में रहकर भी पानी से गीला नहीं

होता। इसलिए ऐसा कहना कि कमल का पत्ता पानी को नहीं छूता यह परम सत्य है।

विधि मंत्री – हे विद्वत् शिरोमणि! हम इन दो प्रकार के वचनों को सुनकर हम क्या अर्थ समझें?

पण्डितजी – संयोगों को देखकर कथन करने वाले व्यवहारचन्द के कथन औपचारिक हैं, अयथार्थ हैं अतः वह जानने–सुनने योग्य तो हैं; पर श्रद्धेय नहीं। जबकि वस्तुस्वरूप के अनुसार कथन होने से निश्चयकुमार के कथन पारमार्थिक हैं, सत्यार्थ हैं। वही श्रद्धेय हैं। ऐसा अर्थ समझना चाहिए।

मुझे बस इतना ही कहना है।

महाराज – जीव और कर्म के आक्षेपों व उनके साक्ष्यों को सुनने के बाद पण्डित स्याद्वाद कुमार द्वारा प्रस्तुत सुन्दर स्पष्टीकरण सुनकर हम सभी इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि जीव अपनी भूल से ही दुःखी है। अपनी भूल न स्वीकार कर यह जीव अपनी सज्जनता दिखलाने के लिए कर्म को जबरदस्ती ही दोष लगा रहा है।

यह सभा इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि '**कर्म विचारै कौन, भूल जीव की अधिकाई।**''

इसलिए जीव को यह आदेश दिया जाता है कि वह अपनी भूल सुधार कर अनंतज्ञान, अनंत

दर्शन, अनंत सुख रूप अपने अनंत वैभव को प्रकट करे अन्यथा चार गति का परिभ्रमण करना पड़ेगा।

कर्म को इस राजसभा में निर्दोष घोषित किया जाता है।

सभी – न्यायप्रिय श्रेणिक महाराज की... जय हो।

दूत का प्रवेश – हे महाराज! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आश्चर्य! महान आश्चर्य! नगर के चारों ओर रत्नवृष्टि हो रही है, देवदुंदुभी बज रही है, सुर-गण नगर की ओर आ रहे हैं महाराज।

महाराज – अरे यह तो सुखद समाचार है। इस तरह की पुष्पवृष्टि, देवों का आगमन तीर्थंकर के कल्याणकों में ही होता है । लगता है मुनिराज महावीर स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई है अत: देवगण आ रहे हैं। चलो हम सब भी ज्ञान कल्याणक मनाने चलें।

बोलो भगवान महावीर स्वामी की जय हो।

भगवान आत्मा आनंद भण्डार, चेतन उस पर दृष्टि कर।
शांत स्वरूप को लक्ष्य में ले हो जायेंगे सब संकट हर।।
यदि कर्म विकार करायें तुझे, तो कर्माधीन तू हो जाये।
ऐसी स्थिति में सुन चेतन, तुझे शाश्वत सुख न मिल पाये।
तू चेतन कर्माधीन नहीं ये पूज्य गुरु की कड़ी मुहर।।१।।

– अभयकुमार शास्त्री

2

कर्म विचारे कौन ?

(अदालत लगी हुई है)

द्वारपाल – सावधान न्यायाधीश महोदय पधार रहे हैं।

(न्यायाधीश महोदय का प्रवेश, सभी खड़े होकर अभिवादन करते हैं।)

न्यायाधीश – आज का मुकदमा पेश किया जाये।

पेशकार – योर ऑनर! आज जीव और कर्म के मुकदमे पर विचार किया जायेगा।

न्यायाधीश – जीव और कर्म को हाजिर किया जाये।

प्रहरी – जीवराज हाजिर होऽऽऽ

कर्म – वल्द पुद्गल हाजिर होऽऽऽ

(जीव व कर्म न्यायालय में प्रवेश करते हुए न्यायाधीश को अभिवादन करते हैं)

न्यायाधीश – बहस प्रारंभ की जाये।

जीव और कर्म कटघरे में खड़े होते हैं और उन्हें शपथ दिलाई जाती है।

(मैं अदालत में जो कुछ भी कहूँगा, सच कहूँगा, सच के सिवा कुछ नहीं कहूँगा।)

वकील (जीव) – (विनम्रतापूर्वक) मैं अपने मुवक्किल की ओर से पक्ष प्रस्तुत करने की इजाजत चाहता हूँ।

न्यायाधीश – इजाजत है।

वकील (जीव) – योर ऑनर मेरे मुवक्किल जीवराज को यह कर्म चारों गतियों में घुमा-घुमा कर दु:खी कर रहा है, जीव तो लोकालोक को जानना चाहता है, परन्तु कर्मराज के दुष्ट बेटे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी इसे ज्ञान ही नहीं होने देते। जीव कुछ लेना-देना, भोगना चाहता है ये अंतराय वहीं टांग अड़ा देता है। छोटा बेटा वेदनीय तो और भी खतरनाक है, जब देखो कभी पेट दर्द, कभी सिर दर्द, कभी ब्लड प्रेशर तो कभी शुगर और कैंसर जैसी बीमारियों से जीना हराम कर देता है।

जीव – अरे साहब! डॉक्टरों की फीस चुका-चुका कर परेशान हूँ।

वकील (जीव) – इस कर्म ने जीवराज के ज्ञानधन को चुरा लिया है। कर्म नं. 1 का चोर है एवं जीवराज को सताने वाला है। मेरा अनुरोध है कि कर्म से ज्ञानधन बरामद कर जीवराज को दिया जावे एवं चोरी करने एवं जीवराज को सताने, दु:खी करने के इल्जाम में कर्म को कड़ी से कड़ी सजा दी जावे।

वकील कर्म – माई ऑब्जेक्शन योर ऑनर! बहस पूरी हुई बिना

ही मेरे काबिल दोस्त मेरे मुवक्किल को चोर सिद्ध कर रहे हैं, यह सरासर अन्याय है।

न्यायाधीश – आपकी आपत्ति स्वीकार की जाती है। वादी के वकील को सलाह दी जाती है कि वह अपने पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करें व मर्यादा के बाहर शब्दों का प्रयोग न करें।

वकील कर्म – धन्यवाद महोदय।

वकील जीव – महोदय! जैन संविधान में अनेक प्रमाण हैं जिनमें स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है कि कर्म ही जीव को अनादिकाल से दु:खी किये हुए हैं एवं जीव को सम्यग्दर्शन से लेकर सर्वज्ञता व मोक्ष तक को जबरदस्ती रोके हुए हैं।

योर ऑनर! अगर ये कर्म न होते तो जीवराज तो अभी तक सिद्धालय में पहुँचकर अनंत सुखी हो गया होता। जब जीव के पास ज्ञान ही नहीं रहा तो फिर वह कैसे स्व-पर को जाने, किस तरह मोक्षमार्ग में गमन करे।

वकील कर्म – ऑब्जेक्शन योर ऑनर – मेरे विद्वान् वकील जबरदस्ती मेरे मुवक्किल पर आरोप लगा रहे हैं। जीव स्वयं ही पुरुषार्थ न करे तो इसमें कर्म का क्या दोष है? कर्म हाथ पकड़ कर तो मोक्ष नहीं पहुँचायेगा। मी लॉर्ड! जीव स्वयं ही दुकान, टी. वी. और बीबी से फुरसत नहीं निकालता है; जीव

स्वयं ही अपने गुणों को भूलकर पुरुषार्थहीनता से दु:खी हो रहा है और आरोप मेरे मुवक्किल पर लगा रहा है। यह सरासर अन्याय है।

वकील जीव – योर ऑनर, मुझे बात पूरी करनी दी जाये।

न्यायाधीश – ऑर्डर ऑर्डर! वादी को अपनी बात पूरी करनी दी जाये। आप अपना पक्ष बाद में प्रस्तुत करें। वादी के वकील अदालत के समय का ध्यान रखते हुए प्रमाण प्रस्तुत करें।

वकील जीव – मैं अदालत के समक्ष निवेदन करना चाहता हूँ कि जिनागम का कर्मशास्त्र सम्पूर्ण रूप से इसी बात की सिद्धि करता है कि कर्म ही जीव को दु:खी करने वाला व ज्ञानधन को लूटने वाला है। प्रमाण स्वरूप यह शास्त्र न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूँ (शास्त्र प्रस्तुत करता है।) इतना ही नहीं अनेक स्तुतियों में भी कहा गया है कि कर्मों ने ही जीव का मोक्ष रोका हुआ है –

1. रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में,
ठाड़े हैं मोक्षमग में, तकरार मो सों ठानी।।

2. कर्म बड़े बलवान जगत में पेरत हैं।

योर ऑनर! मुझे बस इतना ही कहना है।

न्यायाधीश – प्रतिवादी वकील अपना पक्ष प्रस्तुत करें –

वकील कर्म – योर ऑनर, हमारे काबिल दोस्त ने अपनी बुद्धि के अनुसार तर्क प्रस्तुत किये हैं। पर मुझे उनकी

बुद्धि पर तरस आता है। उन्होंने आगम के जो प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, वे सब व्यवहारनय के कथन हैं। व्यवहारनय एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्ता उपचार से कहता है। व्यवहारनय में निमित्त की ओर से कथन किया जाता है। परमार्थ से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता नहीं है।

कर्म – अब सच सामने आ जायेगा।

वकील कर्म – जीव चेतन है, कर्म जड़ हैं, जीव अरूपी है, कर्म रूपी हैं; दोनों में द्रव्य-गुण-पर्याय से द्रव्य-क्षेत्र-काल भाव से अत्यन्त भिन्नता है, तब कर्म जीव का ज्ञान धन कैसे चुरा सकता है? वह जीव को कैसे दु:खी कर सकता है?

योर ऑनर! जीव के सुखी-दु:खी होने में कर्म का नहीं; जीव का ही दोष है। कर्म पूर्णतया निर्दोष है।

इस बात को सिद्ध करने के लिए अधिक तर्क व प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। केस हाथ पर रखे आंवले की तरह स्पष्ट है। इसलिए मैं अदालत से निवदेन करता हूँ कि जीव को कर्म पर झूठा आरोप लगाने के अपराध में निगोद का चक्कर लगवाया जावे एवं कर्म को बाइज्जत बरी किया जाये। देट्स ऑल योर ऑनर।

न्यायाधीश – दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद अदालत

निर्णय सुनाये, उससे पहले अदालत स्वयं जीव और कर्म से बात करना चाहती है।

हे जीवराज! आपको कर्म से क्या शिकायत है ?

जीवराज – साहब ! मैं तो लुट गया, बरबाद हो गया। भवविकट वन मैं कर्म बैरी ज्ञानधन मेरो हर्यो।' लूट लिया सरकार इस दुष्ट कर्म बैरी ने लूट लिया। साहब न्याय कीजिये। इस कर्म को फांसी की सजा दीजिये।

न्यायाधीश – जीवराज घबराओ नहीं। न्याय अवश्य होगा। मिस्टर जीवराज! आप यह बताओ कि जब कर्म ने ज्ञानधन लूटा तब तुम क्या कर रहे थे ? तुमने उसे रोका क्यों नहीं ? तुम सावधान क्यों नहीं हुए?

जीवराज – क्षमा करें साहब!'अकेला ही हूँ मैं, कर्म सब आये सिमट के।' ये आठ ,मैं अकेला, इनकी 148 की गैंग है साब! मैं इनसे कैसे मुकाबला कर सकता था?

कर्म – साब! मैंने तो इसके ज्ञान को देखा ही नहीं, तब चुराने की तो बात ही बेकार है। यह मेरे और मेरे परिवार पर झूठा ही आरोप लगा रहा है।

जीवराज – इसी ने चुराया सरकार। अब यह झूठ भी बोल रहा है। इसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाये।

कर्म – मैंने नहीं चुराया साब। जीव मुझ पर झूठा आरोप लगाकर मेरी मान हानि कर रहा है।

जीवराज – अरे कर्म! मेरे ज्ञान को चुराकर, भव-भव में दुःख देकर, बरबाद कर, अब ईमानदार बन रहा है।

महाराज – ऑर्डर-ऑर्डर-ऑर्डर! शान्त हो जाइये!

जीवराज (रुआंसे स्वर में)–

'मैं प्रभु दीन अनाथ, ये मिल दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनिये साहिब मेरे।।''

दया करके मेरा ज्ञानधन मुझे दिला दीजिये, मुझे इसके बंधन से छुड़वा दीजिये सरकार।

न्यायाधीश – ठीक है, ठीक है यहाँ सभी के साथ न्याय होता है। किसी के साथ अन्याय नहीं होगा।

अच्छा मिस्टर कर्म! आप यह बताइये कि आप जीव के साथ कब से रह रहे हैं ?

कर्म – सर! मैं तो अनादिकाल से जीव के साथ रह रहा हूँ।

न्यायाधीश – क्या आप जीव के साथ संसार में सब जगह रहते हो?

कर्म – जी सरकार।

न्यायाधीश – तब तो आप जीव के साथ नरक में जाकर बहुत दुःख भोगते होंगे ?

कर्म – दुःख! मुझे किस बात का दुःख, श्रीमान्‌जी। दुःख तो जीव ही भोगता है।

न्यायाधीश – अच्छा तो जीव के साथ स्वर्ग में जाकर आनंद तो लेते होगे?

कर्म – आनंद! यह आनंद किस चिड़िया का नाम है। ये सुख-दु:ख, स्वर्ग-नरक क्या है यह सब मुझे पता नहीं है साब।

न्यायाधीश – अच्छा ये बताओ यह जो आपके सामने खड़ा है यह कौन है ?

कर्म – सरकार! मुझे अपना ही पता नहीं है कि मैं कौन हूँ, तो मैं ये कैसे बताऊँ कि यह कौन हैं ?

न्यायाधीश – अच्छा मिस्टर जीवराज! आपको तो पता ही होगा कि ये आपके सामने कौन हैं?

जीवराज – अरे साहब! यही तो दुष्ट कर्म हैं, पुद्‌गल होते हुए भी मुझे घुमा-घुमा कर 'कबहूं इतर निगोद, कबहूं नरक दिखावै, सुर-नर पशु गति मांहिं बहुविधि नाच नचावै। बिन कारण जग बंधु, बहुविधि वैर लियो जी।' इन्हें तो कभी नहीं भूल सकता सरकार।

न्यायाधीश – अरे आप तो इन्हें अच्छी तरह जानते हैं। तो फिर अब आप ही बताइये कि आप कौन हैं ?

जीवराज – मैं सरकार! मैं तो जीव हूँ, दुखिया हूँ, चारों गतियों में भटक-भटक कर परेशान हूँ सरकार।

न्यायाधीश – अच्छा तो जीवराज! जरा यह भी बतावें कि नरक में आपको क्या कष्ट प्राप्त हुये?

जीवराज – अरे साहब! कुछ मत पूछिये (रोते हुए) नरक में इन कर्मों ने मुझे जब पटका साहब तब – 'तहाँ भूमि परसत दु:ख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहीं तिसो।

तहाँ राध श्रोणित वाहिनी, कृमि कुल कलित देह दाहिनी। (पंक्तियों को गाकर नहीं, संवाद की तरह धीरे-धीरे पढ़ा जावे।) और सरकार –

''सिंधु नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूंद न लहाय।
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटे न भूख कणा न लहाय।।''

सरकार इस दुष्ट कर्म ने एक-एक बूंद पानी और एक-एक दाने को तरसाया। साहब अब आपसे ही न्याय की आशा है –

'अब आयो तुम पास सुनि जिन सुजस तिहारो।
नीति-निपुण जगराय, कीजे न्याय हमारो।।'

न्यायाधीश – (मुस्कराते हुए) अरे भाई जीवराज! तो स्वर्ग का आनंद भी तो ये कर्म ही दिलाते होंगे। उनके बारे में तो कुछ बताओ।

जीव – अरे कहाँ साहब! जैसे-तैसे बड़ी मेहनत से, तप-त्याग के कष्ट सहन करके जब स्वर्ग पहुँचता हूँ, थोड़ा सा मजा आता है कि ये दुष्ट वहाँ भी आ टपकता है और समय हो गया की घंटी बजा देता है। वहाँ से मुझे टपका कर स्थावरकाय पेड़ पौधे में रहने की सजा दे देता है। साहब मजा कम सजा ज्यादा है। ऐसे दुष्ट कर्म को साहब कठोर सजा देने की कृपा करें।

न्यायाधीश – अच्छा जीवराज! ये कर्म लुटेरे हैं, चोर हैं, इन्होंने तुम्हें स्वर्ग में घुमाया, नरक में रुलाया, दु:खी किया, ये तुम्हें कैसे पता है? जबकि इन कर्मों को तो कुछ पता नहीं है।

जीवराज – अरे सरकार! ये सब कर्म कैसे जान सकते हैं, यह तो निरे मूर्ख हैं, जड़ हैं। (अहंकार पूर्वक)मैं तो यह सब अपने ज्ञान से जानता हूँ । इस विश्व में एकमात्र मैं ही तो समझदार हूँ। (इतना कहते ही अपना मुँह पकड़ लेता है, नीची गरदन करके खड़ा रह जाता है)

न्यायाधीश (गुस्से में) – मिस्टर जीवराज! अभी आपने स्वयं कहा कि मैं अपने ज्ञान से जानता हूँ। इसका मतलब है तुम्हारा ज्ञान तुम्हारे पास ही है और जबरदस्ती तुम कर्म पर आरोप लगा रहे हो कि इसने मेरा ज्ञानधन चुरा लिया। आप झूठ बोल रहे हो।

सचाई यही है कि जीवराज आप स्वयं सम्यग्दर्शन प्राप्त करने, सुखी होने, मोक्ष जाने, का पुरुषार्थ नहीं करते; मात्र विषय-कषाय, पुण्य-पाप में ही लगे रहते हो और अपने दोषों को कर्मों के ऊपर डालकर दु:खों से बचना चाहते हो। ऐसी अनीति जैन शासन में संभव नहीं है। कर्म निर्दोष है, गलती तुम्हारी ही है।

जीवराज – (रोते हुए) सरकार मुझसे भूल हो गई, मैं अपने

दोष कर्म पर लगा कर बचना चाहता था। मैं अपराधी हूँ, मैं अपनी भूल स्वीकार करता हूँ।

''मैं भ्रम्यो अपनपो बिसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्य पाप।
निजको परको करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।''

यह जो दु:ख प्राप्त किये उनमें मेरी ही भूल है -

पाये अनंते दु:ख अब तक जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहीं पहिचान कर।।
भव बंध कारक सुख प्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निज पर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहीं पान कर।।''

न्यायाधीश – सभी पक्षों को सुनने के बाद अदालत इस निर्णय पर पहुँची है कि जीवराज! यदि तुम सुखी होना चाहते हो, आत्मानुभूति करना चाहते हो, तो अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा, तत्त्वज्ञान का अभ्यास करो, पंचकल्याणकों के दर्शन करो, देव-शास्त्र-गुरु की आराधना करो, तो तुम अभी भी सुखी हो सकते हो। यदि आपकी साधना पूर्ण हुई तो इसी भव में नहीं तो 2-4 भव बाद तुम्हें निश्चित ही मुक्ति प्राप्त होगी। अन्यथा इसी तरह चार गति के चक्कर खाते हुए अनंत दु:ख उठाना पड़ेंगे।

कर्म विचारे कौन भूल तेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घनघात, लोह की संगति पाई। कर्म निर्दोष हैं, इसलिए कर्मों को बाइज्जत बरी किया जाता है। (फैसले पर न्यायाधीश हस्ताक्षर करते हैं)

प्रहरी – बोलिए वीतरागी जैन शासन की – जय। ---

3

निमित्त-उपादान

(ज्ञायक, चिन्मय, आत्मप्रकाश, शुद्धात्म, चिद्रूप फुटबॉल खेलकर आ रहे हैं, रास्ते में बातचीत करते हैं।)

आत्मप्रकाश – (पसीना पोंछते हुए) आज तो खेलने में मजा आ गया। ज्ञायक, कल हम सभी पिकनिक पर चलें।

ज्ञायक – नहीं यार! कल तो मैं और चिन्मय 10 दिवसीय शिविर में भाग लेने सोनगढ़ जा रहे हैं।

शुद्धात्म – अरे यार! तू भी क्या छुट्टियों में शिविर में जाने की बात कर रहा है, अभी-अभी तो हमारी परीक्षायें हुई हैं; जैसे-तैसे तो पुस्तकों और पढ़ाई से पीछा छूटा है, तू फिर से पढ़ाई की बात करने लगा। अब तो तो खेलने-कूदने का समय है। छुट्टियाँ आखिर होती किसलिए हैं?

चिन्मय – हाँ,यह सच है कि छुट्टियाँ खेलने-कूदने के लिए हैं, पर शिविर भी तो केवल छुट्टियों में ही लगते हैं, इसलिए शिविर में तो जाऊँगा ही। मैं तो कहता हूँ कि तुम सब भी हमारे साथ शिविर में चलो।

चिद्रूप – अरे यार! तुम भी क्या बात कर रहे हो, खेलने-कूदने से तो हैल्थ बनती है, मनोरंजन होता है।

शिविर में जाने से क्या लाभ है ? वही घिसी-पिटी बातें।

ज्ञायक – अरे भइया! खेलने-कूदने से तो तन स्वस्थ रहता है। पर शिविर में जाने से मन स्वस्थ होता है, विचार स्वस्थ होते हैं, वस्तुस्वरूप की सच्ची श्रद्धा होती है, सम्यग्ज्ञान होता है। तभी हमारे जीवन में शांति हो सकती है। सच में तो विचारों की शुद्धता ही सच्चा मनोरंजन है।

शुद्धात्म – बात तो तुम सही कह रहे हो। पर मेरे दादाजी कह रहे थे कि सोनगढ़ में आधी-अधूरी बातें सिखाई जाती हैं जैसे कि- 'जब भी काम होता है तब निमित्त और उपादान दो कारण होते हैं; पर वहाँ निमित्त को मानते ही नहीं हैं; केवल उपादान की ही महिमा गाते हैं।

चिद्रूप – मेरे चाचाजी भी ऐसी ही बातें करते हैं; वो कह रहे थे कि सोनगढ़ वाले कहते हैं कि 'माँ रोटी नहीं बनाती, पेट्रोल से गाड़ी नहीं चलती, गुरु से ज्ञान नहीं होता ये सब तो निमित्त हैं।' पर ये निमित्त-उपादान होता क्या है ?

ज्ञायक – देखो! जो पदार्थ-वस्तु स्वयं कार्यरूप परिणमित हो उसे उपादान कहते हैं जैसे- चूड़ीरूप सोना, रोटीरूप आटा, मकानरूप ईंट, ज्ञानरूप आत्मा ही हुए हैं न? इसलिए सोना, आटा आदि उपादान हैं।

चिन्मय – और 'जो पदार्थ स्वयं कार्यरूप परिणमित न हो पर कार्य उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिस पर आ सके उसे निमित्त कहते हैं।' जैसे जब सोना चूड़ीरूप हुआ, उस समय सुनार और उसके औजार, रोटीरूप जब आटा हुआ तब माँ और चकला बेलन, जब हमें ज्ञान होता है तब पुस्तक, गुरुजी इन कार्यों के अनुकूल हैं, इसलिए इनको ही निमित्त कहते हैं।

आत्मप्रकाश – पर भइया! एक बात समझ में नहीं आई कि श्री कानजीस्वामी निमित्त को अकर्ता क्यों कहते हैं? जबकि सामने दिख रहा है कि जब माँ ने रोटी बनाई तभी रोटी बनी, जब सुनार ने चूड़ी बनाई तभी चूड़ी बनी, जब गुरुजी ने पढ़ाया तभी ज्ञान हुआ। बोलो ऐसा ही होता कि नहीं?

ज्ञायक – नहीं भाई! ऐसा सोचना गुलाम मार्ग है; सच्चाई तो यह है कि जिस आटे में उस समय रोटी बनने की योग्यता थी, वही आटा रोटीरूप हुआ तभी माँ को भी रोटी बनाने का विचार आया, तभी उसने अपने ज्ञान और हाथों की क्रिया रूप कार्य किया। आटा और माँ दोनों का कार्य एक ही समय में अपनी-अपनी योग्यता से ही हुआ है।

चिद्रूप – पर यार! दिखता तो यही है कि जब रोटी बनाई तभी बनी, जब गुरुजी ने पढ़ाया तभी ज्ञान हुआ।

चिन्मय – (समझाते हुए) जरा गंभीरता से विचार करो, हमारे गुरुजी सबको एक जैसा पढ़ाते हैं कि नहीं; पर क्या हम सबको एक जैसा समझ में आता है? क्या सभी के नम्बर एक जैसे आते हैं ? माँ रोटी बनाती है तो क्या माँ सभी रोटियाँ एक जैसी बना पाती है ? क्या फैक्ट्रियों में भी रिजेक्टेड सामान नहीं हो जाता है ?

शुद्धात्म – हाँ! यह बात तो है यार। अपनी ही कक्षा में कोई फर्स्ट डिवीजन में पास होता है, तो कोई थर्ड। कोई रोटी अच्छी सिकती है, तो कोई जल जाती है। ऐसा क्यों होता है?

आत्मप्रकाश – अरे हाँ! तब तो यदि हम ऐसा मानें कि गुरुजी ने पढ़ाया और पास किया तब तो फिर यह भी मानना पढ़ेगा कि गुरुजी ने ही फैल भी किया।

ज्ञायक – (प्रसन्न होते हुए) हाँ! अब बात तुम्हारी कुछ समझ में आ रही है। जब भी कार्य होता है, वहाँ उपादान और निमित्त दोनों दोनों होते हैं, पर कार्य सब अपनी-अपनी योग्यता से ही होता है, किसी दूसरे के करने, कहने या चाहने से नहीं होता। यही बात कानजीस्वामी कहते हैं।

चिद्रूप – पर यार! अभी भी एक बात समझ नहीं आई कि अभी हम खेल रहे थे, तब जब हमने बॉल को

ठोकर लगाई तभी गोल हुआ न? बॉल कोई अपने आप तो गोल में गई नहीं। जब तेंदुलकर जमकर शॉट लगाता है तभी तो रन बनते हैं ना?

ज्ञायक – भइया! बॉल को जब और जहाँ जाना होता है वहाँ ही जाती है। अगर तुम्हारी इच्छा और मेहनत से जाती है, तो जरा सोचो, तुम हर मैच में गोल क्यों नहीं कर पाते ? क्यों बॉल पोल के ऊपर से निकल जाती है ? तुम्हारी ठोकर के अनुसार ही बॉल चलती है तो आउट क्यों हो जाती है? इसीलिए न कि वह हमारे कारण नहीं; अपनी योग्यता से जहाँ जाना हो वहाँ जाती है। हमारा दिमाग और हाथ-पैर तो निमित्त मात्र हैं।

आत्मप्रकाश – अरे हाँ यार! तभी तो जब हमें लगता है आज मैच नहीं जीतेंगे उस दिन तो जीत जाते हैं, और कई बार जीतते जीतते हार जाते हैं। सचिन तेंदुलकर जैसे खिलाड़ी भी जीरो पर आउट हो जाते हैं और तभी तो सबके चाहने पर भी महाशतक लगाने में इतना लम्बा समय लग गया।

शुद्धात्मप्रकाश – (प्रसन्नता से)अब कुछ समझ में आ रहा है। देखो, हम निरन्तर स्वस्थ रहने का उपाय करते हैं, फिर भी बीमार हो जाते हैं (हंसते हुए) और यह पतलू रोजाना चावल, दूध और केला खाता है फिर भी मोटा नहीं हो रहा है और एक ये अपना

मोटू डाइटिंग करते हुए भी मोटा हो रहा है। (सब हंसने लगते हैं)

ज्ञायक – हाँ भइया ! यही बात सच्ची है कि प्रत्येक वस्तु अपनी योग्यता, अपने स्वभाव के अनुसार, अपने समय में ही कार्य करती है इसीलिये एक अज्ञानी को सैकड़ों ज्ञानी मिल कर ज्ञानी नहीं बना सकते और ज्ञानी को अज्ञानी नहीं बना सकते। पेड़ को चश्मा लगाने से वह देखने तो नहीं लगेगा, क्योंकि उसमें देखने की योग्यता ही नहीं है।

चिद्रूप – हाँ अब कुछ–कुछ समझ में आ रहा है, पर भइया एक बात मेरी समझ में अभी भी नहीं आ रही।

चिन्मय – क्या?

चिद्रूप – कि जब गुरुजी के पढ़ाने से और किताबों से ज्ञान नहीं होता तो फिर आप सोनगढ–जयपुर शिविर में क्यों जाते हो? क्योंकि शिविर और शास्त्र तो निमित्त हैं, ज्ञान तो अपने आप से होता है।

ज्ञायक – शास्त्रों से, शिविर से या गुरु से समझ में नही आता यही समझने के लिए तो हम वहाँ जाते हैं। हम समझते अपनी योग्यता से हैं और इस योग्यता के प्रकट होने के समय यह शिविर आदि ही

अनुकूल हैं। मैं, अपने ज्ञान का निश्चय से कर्ता हूँ और उसी समय उस ज्ञान के अनुकूल जो भी होता है उसे ही निमित्त कहा जाता है, व्यवहार से उसे कर्ता भी कहते हैं।

शुद्धात्मप्रकाश – (प्रसन्नता पूर्वक) अरे यार ज्ञायक! आज तो खेल की जीत से भी ज्यादा मजा तुमसे चर्चा करके आ गया। पर अभी-अभी तुमने निश्चय-व्यवहार ऐसा कुछ कहा ये निश्चय-व्यवहार क्या हैं ?

ज्ञायक – देखो भाई! मैं तो इतना ज्यादा जानता नहीं हूँ, यदि तुम्हें ज्यादा जानने की इच्छा हुई है तो तुम सब भी हमारे साथ तीर्थधाम सोनगढ़, जयपुर या ध्रुवधाम में लगने वाले शिविरों में चलना, वहाँ टेन्शनलैस जीवन जीने हेतु निमित्त-उपादान, क्रमबद्धपर्याय, अकर्तावाद, चार अभाव, निश्चय-व्यवहार आदि सिद्धान्तों को बड़ी ही सरलता से सिखाया जाता है।

सभी – हम सब तुम्हारे साथ शिविर में जरूर चलेंगे।

बोलो वस्तुस्वतंत्रता के उद्घाटक परमाराध्य भगवान महावीर स्वामी की....जय हो, जय हो, जय हो।

4

भेद-विज्ञान

पात्र परिचय

धनिया - धोबी **अगम** - शान्त प्रकृति का युवक

दिव्यांश - किंचित् उद्दंड प्रकृति वाला युवक;

चिन्मय - विद्वान् मित्र **ज्ञानेश** - पण्डितजी

(शाम का समय धोबी की दुकान - धनिया गुनगुना रहा है।)

धनिया - धनिया धोबी मेरा नाम, कपड़े धोना मेरा काम
मैल को भगाऊँ, दाग को मिटाऊँ, कपड़ों को चमकाऊँ।

हो....हो...हो... धनिया धोबी..........(प्रेस करते हुए, उपेक्षाभाव से) ये सेठ लोग कितने गंदे कपड़े कर लेते हैं। इन्हें धोते-धोते मेरे पप्पू की अम्मा आधी घिस गई है।

दिव्यांश - (आते हुए) अरे भइया धनिया।

धनिया - (प्रेस करते हुए ही) कहिए भाई साहब! क्या सेवा करूँ ?

दिव्यांश - अरे भई! मैं परसों एक चादर धोने को दे गया था। वह तैयार कर दिया क्या?

धनिया – अरे; बिल्कुल तैयार है साब, एकदम झकाझक, यह रही। (रैक पर से चादर उठाकर देते हुए)

दिव्यांश – ठीक है लाओ इधर, पैसे बाद में पहुँचा दूँगा।

धनिया – कोई बात नहीं भाई साब! आप तो चादर लेते जाओ, पैसे तो आते रहेंगे।

(दिव्यांश चादर लेकर एक तरफ सो जाता है।)

धनिया – (प्रेस कर रहा है एवं गुनगुना रहा है)

धनिया धोबी मेरा नाम, कपड़े धोना मेरा काम ।

मैल को भगाऊँ, दाग को मिटाऊँ, कपड़ों को चमकाऊँ हो.....

(अगम को आता देखकर)

धनिया – जयजिनेन्द्र! अगम भाईसाहब। आप तो बहुत दिनों बाद नजर आ रहे हैं, कहीं बाहर गए थे क्या ?

अगम – हाँ भाई! धनीराम बाहर ही गया था और आज फिर जयपुर जाना है। धनीराम मैं एक चादर धोने दे गया था, वह तैयार कर दिया।

धनिया – भाई साहब! धनिया समय का पाबंद है। आपकी चादर तो कब से तैयार है, यह लीजिए। (चादर उठाकर देता है।)

अगम – (चादर अच्छी तरह देखते हुए।) अरे धनीराम यह चादर मेरा नहीं है। दूसरा दिखाओ यह और किसी का होगा।

धनिया – अरे बाप रे! (सिर पकड़ते हुए)धनिया से भूल हो गई, अभी–अभी दिव्यांश भाई साहब एक चादर ले गए हैं; उनका चादर भी बिल्कुल ऐसा ही था। कल मैं चादर बदल कर दे दूँगा।

अगम – अरे नहीं भइया मुझे तो अभी रात को ही जयपुर जाना है। मुझे चादर बहुत जरूरी है।

धनिया – तो भाई साहब; आप ही जरा तकलीफ उठाते हुए उनके वहाँ से चादर बदलते हुए चले जाना।

अगम – हाँ यह ठीक है। (दिव्यांश के घर जाकर)

अरे कोई है.. दिव्यांश ओ दिव्यांश! (कोई आवाज नहीं आती तो अंदर जाता है) अच्छा.. तो भाई साहब चादर तानकर सो रहे हैं। दिव्यांश ओ दिव्यांश (चादर खींचता है)

दिव्यांश – (गुस्से में, आँखें मलते हुए) कौन बेवकूफ मेरी नींद खराब कर रहा है?

अगम – अरे भइया! नाराज मत होओ मैं तो अपनी चादर लेने आया हूँ।

दिव्यांश – दिमाग तो खराब नहीं हो गया। एक तो मेरी नींद खराब कर दी, आ हा हा क्या मजा आ रहा था। दूसरे कह रहे हो कि अपनी चादर लेने आया हूँ, मेरे घर को कपड़े की या धोबी की दुकान समझ रखी है क्या?

अगम – अरे नहीं भइया! ये जो चादर तुमने ओढ़ी है, वो चादर मेरी है।

दिव्यांश – लो करलो बात। अब साहब मेरी चादर को अपनी बताने लगे, हद हो गई फिर कहना ये घर भी मेरा है। अरे भइया, ये चादर तो मैं अभी धनिया के यहाँ से धुलाकर लाया हूँ।

अगम – देखो भइया! धनिया ने ही कहा है कि मेरा चादर तुम्हारे पास है।

दिव्यांश –(गुस्से में उंगली दिखाते हुए) देखो एक बार में ही समझ लो कि यह चादर मेरा है।

अगम – (गुस्से में) तुम भी अच्छी तरह समझ लो कि यह चादर मेरा है। (चादर खींचता है)

दिव्यांश – (गुस्से में) नहीं मेरा है। देखो लड़ाई हो जायेगी मैं कहता हूँ चादर मेरा है। (आपस में चादर खींचते हैं)

(इतने में चिन्मय व ज्ञानेश का प्रवेश)

चिन्मय – अरे भाइयो! यह क्या महाभारत मचा रखी है।

अगम – देखो न भाई साहब! यह मेरा चादर नहीं दे रहा है।

दिव्यांश – बड़ा अंधेर है भाई! मेरे घर में आकर मुझे ही चोर बना रहा है। (घूंसा दिखाते हुए) गुस्सा तो ऐसा आ रहा कि सिर फोड़ कर रख दूँ।

चिन्मय – चुप रहो! फालतू की बातें मत करो। अच्छा अगम ये तो बताओ कि तुम्हारी चादर यहाँ कैसे आ गई?

अगम – अरे भाई साहब, मैने अपनी चादर धनिया के यहाँ धुलने डाली थी। मैं वहाँ चादर लेने गया तो धनिया ने बताया कि मेरा चादर गलती से दिव्यांस के यहाँ चला गया है तो फिर मैं अपना चादर यहाँ लेने आ गया।

दिव्यांश – अच्छा तो तुम्हारी चादर की कोई पहचान है?

अगम – हाँ, यह देखो ना चादर पर मेरा नाम लिखा है।

(सभी चादर देखते हैं)

चिन्मय – अरे हाँ! इस पर तो अगम का ए. ही लिखा हुआ है।

दिव्यांश – यह चादर तो सच में इसका ही है, तो फिर मेरा चादर कहाँ है?

अगम – तुम्हारा चादर यह रहा। तुम तो मेरी बात सुन ही नहीं रहे थे। मैं तुम्हारा चादर धनिया के यहाँ से लेकर आया हूँ।

दिव्यांश – मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैं आपकी चादर को अपनी मानकर व्यर्थ ही झगड़ा कर रहा था। (हाथ जोड़ कर) आप कृपया मुझे क्षमा कर देवें।

चिन्मय – अरे भाइयो! ऐसी ही भूल हम सब परपदार्थों को अपना मान-मान कर अनादि से कर रहे हैं।

अगम – क्या बात कर रहे हो मैं तो किसी की चीज को हाथ भी नहीं लगाता।

चिन्मय – भइया! अगम यह बात इतनी जल्दी समझ में नहीं आ जायेगी। इसे तो गंभीरता से समझना पड़ेगा।

चिन्मय – देखो! हमारे साथ यह जो अतिथि भाई साहब आये हुए हैं, इनका नाम ज्ञानेशकुमार है, यह ध्रुवधाम से आये हैं, इस संबंध में यही हमें समझायेंगे।

अगम – अरे! हम तो अपनी चादर के चक्कर में आपको देखना ही भूल गये। जय जिनेन्द्र! ज्ञानेश भाई साहब।

ज्ञानेश – जय जिनेन्द्र! मैंने आपकी सभी बातें सुनी हैं। जिस तरह दिव्यांश आपकी चादर को अपनी मानकर सो रहा था, उसी तरह हम सब भी दूसरी वस्तुओं को अपना मानकर सो रहे हैं।

दिव्यांश –(हंसते हुए) क्या बात कर रहे हो भाई साब! सो तो मैं पहले रहा था, अभी तो मैं जाग रहा हूँ।

ज्ञानेश – नहीं भइया! अभी तो आपकी द्रव्य निद्रा टूटी है भाव निद्रा जिसे मोह नींद कहते हैं वह नहीं टूटी।

अगम – इस मोह नींद में क्या होता है ?

ज्ञानेश – जैसे दिव्यांश, द्रव्य निद्रा में तुम्हारे चादर को अपनी मानकर सो रहा था। वैसे ही हम सब मोह नींद में शरीर, घर, दुकान, धन,पुत्रादि परपदार्थों को अपना मानकर सो रहे हैं।

चिन्मय – यह बात पूरी तरह समझ में नहीं आई, जरा अच्छी तरह समझाओ न।

ज्ञानेश – अच्छा सुनो! आप सब अपना नाम तो जानते ही होंगे।

दिव्यांश – हाँ-हाँ क्यों नहीं मेरा नाम दिव्यांश है।

ज्ञानेश – और तुम्हारा ?

अगम – मेरा नाम अगम है।

ज्ञानेश – ये तो आपने इस शरीर के नाम बताये हैं, आप अपना नाम बताइये ना।

दिव्यांश – लो करलो बात। मैं और मेरा शरीर अलग-अलग थोड़े ही हैं। हम दोनों एक ही तो हैं।

ज्ञानेश – नहीं भइया! यही तो हमारी भूल है जो अनादिकाल से चली आ रही है और इस भूल के कारण ही हमें नरक-तिर्यंच आदि गतियों के दु:ख उठाना पड़ रहे हैं।

दिव्यांश – ये बात तो समझ में नहीं आई। ठीक है चादर में तो आपने चिन्ह दिखाकर समझा दिया कि वह

चादर मेरा नहीं है। पर शरीर तो मैं ही हूँ। इस पर तो मेरा ही अधिकार है।

ज्ञानेश – देखो भाई! समझने से समझ में आता है, समझाने से नहीं। आप समझने की कोशिश करोगे तो जरूर समझ में आयेगा। अच्छा यह बताओ कि जीव किसे कहते हैं ?

अगम – अरे! जो जानता-देखता और सुख-दुःख का अनुभव करता है, वही तो जीव है।

ज्ञानेश – और पुद्गल ?

चिन्मय – जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण पाया जाये उसे पुद्गल कहते हैं।

ज्ञानेश – (प्रसंशा करते हुए) बहुत बढ़िया! आप सबको तो सब याद है। अच्छा दिव्यांश तुम बताओ; तुम्हारा रंग कैसा है?

दिव्यांश – मेरा रंग गोरा है।

ज्ञानेश – और वजन कितना है?

दिव्यांश – 45 किलो।

ज्ञानेश – अब यह बताओ कि गोरा- काला रंग, हल्का-भारी वजन, सुगंध-दुर्गंध यह सब किसमें पाये जाते हैं?

दिव्यांश – अभी-अभी तो चिन्मय ने बताया था कि स्पर्श

रस गंध ये सब पुद्‌गल में पाये जाते हैं, मुझे इतना भी याद नहीं रहता क्या?

ज्ञानेश – तो फिर यह कैसे भूल रहे हो कि गोरा रंग और 45 किलो का वजन पुद्‌गल का है जीव का नहीं।

चिन्मय – अरे हाँ यार! ये बात तो सच्ची है कि यह सब तो पुद्‌गल है, पुद्‌गल का है। तो फिर मैं कौन हूँ ?

ज्ञानेश – जैसे शरीर की पहिचान का चिह्न है, उसी तरह जीव की भी अपनी पहिचान है, लक्षण है, वो है जानना-देखना। हम सब जानते-देखते हैं इसलिये हम जीव हैं, शरीर नहीं।

दिव्यांश – (प्रसन्न होते हुए) क्या बात है ज्ञानेश भाई साब। आपने तो सच्ची में हमें जगा दिया। हम तो अभी तक शरीर और जीव दोनों के गुणों को अपना ही मान कर सो रहे थे।

ज्ञानेश – शरीर, धन परिवार को तो छोड़ो हमारे भीतर जो राग-द्वेष, गुस्सा,घमण्ड आदि के भाव होते हैं, वो भी जीव नहीं हैं, जीव का स्वभाव नहीं हैं।

चिन्मय – पर इन सब भावों को तो हम ही कर रहे हैं।

ज्ञानेश – प्रेम का भाव हो या क्रोध का या मान का लोभ का या दया दान का यह सब जैसा संयोग होता है वैसे होते हैं, और हमारी अज्ञानता से होते हैं। अत: शरीरादि परपदार्थों के कारण होने वाले होने

से और दु:ख के कारण होने से वह भी जीव नहीं हैं।

चिन्मय – पर भाई साहब! पुण्य भाव तो मुनिराज के भी होते हैं।

ज्ञानेश – मुनिराज! के पुण्य भाव होता जरूर है, पर उसे वह अपना नहीं मानते उन भावों पर रीझते नहीं हैं। वह उसे अपना दोष मानकर आत्मा में ही लीन होते हैं।

अगम – भाई साहब! आज तो आपने भेदज्ञान का बड़ा ही सुन्दर स्वरूप समझाया है। पर यह भेदज्ञान होगा कैसे ?

ज्ञानेश – जब हम प्रतिदिन स्वाध्याय करेंगे, चिंतन करेंगे मनन करेंगे, तत्त्वाभ्यास करेंगे तो यह भेदज्ञान अवश्य एवं जल्दी ही होगा।

दिव्यांश – क्यों अगम भैया, कुछ समझ में आया अब तो आप चिन्मय के साथ रोजाना स्वाध्याय में आना।

अगम – मैं तो जाऊँगा ही और तुझे भी साथ में ले चलूँगा।

दिव्यांश – क्यों नहीं? मैं भी जरूर चलूँगा।

ज्ञानेश – ये हुई न कोई बात। आओ हम सब भेदज्ञान प्राप्त

करके मोक्षमहल में चलें। बीच रास्ते में पुण्य-पाप के भाव आवें तो उन्हें अपने ज्ञान भाव से नष्ट कर मुक्ति मार्ग में बढ़ते चलें।

धनिया – (दौड़कर आते हुए) अरे भाइयो! हमें यहीं संसार में ही छोड़ दोगे क्या ? हमें भी तो साथ में ले चलो।

ज्ञानेश – अरे भइया! आओ-आओ जिनवाणी तो हम सबको मुक्तिमार्ग में चलने का आमंत्रण देती है।

चलो हम सब चलते हैं (सब मिलकर गाते हैं)

मुक्तिमार्ग प्राप्त कर बढ़े चलो-बढ़े चलो।
रुको न एक क्षण कभी, बढ़े चलो बढ़े चलो।
ये विकार मार्ग में बदल बदल कर आयेंगे
भेष पुण्य का बना, तुझे सदा रिझायेंगे।
शत्रु जानकर इन्हें दले चलो दले चलो..।
मुक्तिमार्ग प्राप्त कर बढ़े चलो बढ़े चलो।

महावीर भगवान की जय हो...

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवाभावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन।।

अर्थ – जितने भी जीव आज तक सिद्ध हुए हैं, वे सब भेदविज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं और जो आज तक संसार में रुल रहे हैं, वे सब एक मात्र भेदविज्ञान के अभाव में ही रुल रहे हैं। – **आत्मख्याति**

5

नेता कौन...... ?

(परिचय- इस संवाद में अनादिनिधन वस्तु व्यवस्था के स्तंभस्वरूप छह द्रव्यों का परिचय नाटकीयता से कराया जा रहा है।)

संचालक - **जीव-पुद्‌गल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल।**
देखो जानो किसकी भैया कैसी चाल।।
एक बार छह द्रव्य खड़े, आपस में हैं कौन बड़े?
इसी बात पर वह झगड़े, पता चला हम हैं न बड़े।
जीव पुद्‌गल धर्म-अधर्म आकाश काल।।

(एक-एक कर छहों द्रव्य प्रवेश करते हैं, नेता की भांति रुक-रुक कर आराम से मंच पर घूमते हुए बोलेंगे, उनके पीछे चार बालक चल रहे हैं वे द्रव्य का परिचय होने के बाद नारे लगायेंगे, अन्य द्रव्य के आने के बाद दलबदलू के तरह अन्य का नारा लगायेंगे)

जीव -(सभा की ओर इसारा करके) जय जिनेन्द्र! क्यों भाइयो! इस दुनिया में सबका नेता बनने लायक कौन है? अरे नहीं पता तो ध्यान सुनो; इस दुनिया को जानने-देखने वाला एक मैं ही हूँ। मेरे अलावा सभी द्रव्य ज्ञान से रहित हैं। मैं ज्ञान-दर्शन-सुख-चारित्र-श्रद्धा आदि अनंत गुणों वाला हूँ, मैं अरूपी

हूँ। सुख का अनुभव करनेवाला हूँ। मैं त्रस स्थावर, संसारी, मुक्त आदि रूपों में भी पाया जाता हूँ। हम संख्या में अनंत हैं। इसलिए इस जगत का नेता मुझे ही मानना चाहिए।

नारा - हमारा नेता कैसा हो...........जीव भैया जैसा हो।

पुद्गल - ठहरो भैया, (हाथ से इसारा करके दिखाते हुए) यह जो रौनक दिखाई दे रही है वह सब मेरी है। रंग, रूप, सुगंध दुर्गंध, धूप-छाया, खट्टा-मीठा, हल्का-भारी, रूखा चिकना, आदि अनेक रूपों वाला अकेला मैं ही हूँ।

टी. व्ही., मोबाइल, कम्प्यूटर, हवाईजहाज सब मेरी ही रचना हैं। हजारों कि.मी. ऊपर जो नीला-नीला दिखाई देता है, जिसे आप लोग आसमान कहते हैं, वह भी मेरी ही रचना है। अनंत जीव हमारी रौनक में ही अटक कर नरक-निगोद में घूम रहे हैं। मैं ही जीवों को कर्म, शरीर, भाषा, आकार आदि देता हूँ। हम संख्या में अनंतानंत हैं। मेरे परमाणु व स्कन्ध दो रूप हैं। इसलिए इस लोक में मैं ही सुन्दर हूँ मेरे कारण ही सुन्दरता है। इसलिए मैं ही नेता बनूँगा।

नारा - पुद्गल भैया..........जिन्दाबाद.......3

धर्म – अरे भाई साहब! जरा शान्ति से काम लो यह जीव और पुद्गल जो चल फिर रहे हैं वह सब मेरी बजह से ही चल फिर रहे हैं। ये जीव भाई साहब निगोद से मोक्ष तक की यात्रा कर लेते हैं और ये पुद्गल भइया 14 राजू तक उड़ जाते हैं वह सब मेरी बदौलत है। अगर मैं न रहूँ तो पत्थर की तरह पड़े रह जाओगे। इसलिए मैं कहता हूँ तुम सबको गमन कराने वाला मैं ही इस जगत का नेता बन सकता हूँ। क्योंकि जो चला सके वही नेता कहलाता है, इसलिए मैं ही नेता हूँ।

नारा – वोट फोर... ......धर्म द्रव्य..........3

अधर्म – अरे नहीं भाई साहब! इस जगत का नेता तो मैं ही हो सकता हूँ। अगर मैं न होता तो जीव और पुद्गलों को एक क्षण का भी विश्राम नहीं मिलता। उन्हें रुकने, आराम करने में तो मैं ही सहायता करता हूँ। कहा भी जाता है ना 'आराम बड़ी चीज है मुँह ढक के सोइये' इसलिए आराम देने वाला होने से मैं ही नेता बन सकता हूँ।

नारा – अधर्म द्रव्य संघर्ष करो.........हम तुम्हारे साथ हैं।

आकाश – अरे चुप! सब अपनी-अपनी, बक-बक किये जा रहे हो, मैं बड़ा, मैं बड़ा। अरे तुम सबसे बड़ा

तो मैं ही हूँ ; मेरे द्वारा दी गई जगह में ही तुम सब जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल रहते हो;इतना ही नहीं अलोक में अकेला मैं ही अनंत फैला हूँ। इसलिए इस जगत में मैं ही सबसे बड़ा हूँ। इसलिए मुझे ही नेता बनाना चाहिए।

नारा – सभी रहेंगे आस–पास.......जीतेगा जब आकाश ......3।

काल – नहीं भइया! सब शांति से काम लो और विचार करो, अगर मैं न रहूँ तो किसी भी द्रव्य में परिणमन नहीं होगा। यह जो सैकिण्ड–मिनट–घण्टा–दिन आदि हैं, वह भी हमारे ही भेद हैं। हम पूरे लोक में असंख्य संख्या में फैले हुए हैं। इसलिए परिणमन कराने के कारण मैं ही नेता बनने के लायक हूँ।

नारा – जात को न पांत को – वोट देना काल को...3।

(तभी ज्ञानेश का प्रवेश)

ज्ञानेश – अरे भाई! यह शोर शराबा क्यों हो रहा है ? किस बात पर झगड़ा हो रहा है ?

जीव – देखो ज्ञानेश भाई! आप ही बताओ इस विश्व में जाननेवाला एक मात्र मैं ही हूँ, इन में तो कोई अकल ही नहीं है। इसलिए इस विश्व का नेता मुझे ही बनना चाहिए।

पुद्गल – नहीं, नहीं। यह सारी रौनक, चमक-दमक मेरी ही है, ये सभी तो रंग-रूप रहित हैं इसलिए मैं ही नेता बनूँगा।

धर्म – तुम कैसे नेता बन सकते हो? तुम दोनों के आने-जाने में मैं ही सहायता करता हूँ, इसलिए मैं ही नेता बन सकता हूँ।

अधर्म – सब चुप रहो! जीव-पुद्गल को ठहरने-आराम देने में सहायक होने से मैं ही नेता बन सकता हूँ।

आकाश – अरे वाह! ठहरने की जगह मैं सबको देता हूँ तो बताओ मेरे अलावा और कोई नेता कैसे बन सकता है?

काल – सबमें परिवर्तन कराने वाला, रात-दिन बनानेवाला एक मात्र मैं ही हूँ। कालचक्र चलाने वाला होने से मैं ही सबका नेता बन सकता हूँ।

ज्ञानेश – ओ हो...! तो यह नेतागिरि की बीमारी तुम्हारे में भी आ गई। आप लोग जरा मेरी बात ध्यान से सुनें। फिर निर्णय करना कि नेता कौन होगा।

देखो! जीव ज्ञानस्वभावी है, इसलिए वह सबको जानता है, यह बात तो सही है; पर जीव भाई सभी द्रव्यों में प्रमेयत्व गुण है इसलिए तुम

ज्ञान से जान पाते हो। इसमें घमण्ड करने या नेता बनने की बात कहाँ से आई?

जीव – ज्ञानेश भाई ! आप सही कह रहे हो। अब ऐसी गलती नहीं करूँगा।

ज्ञानेश – और पुद्गल भाई! तुम्हारी चमक-दमक को अगर जीव न जाने तो दुनिया में किसी को पता ही न लगे कि तुम कौन हो? कैसे हो ? कितने हो ? इसलिए अपने रूप-रस-गंध तथा चमक-दमक का घमण्ड मत करो, नेतागिरी का चक्कर छोडो।

पुद्गल – धन्यवाद ज्ञानेश भाई! आपने हमें हमारी हैसियत का ज्ञान कराया। अब हम ऐसी भूल नहीं करेंगे।

ज्ञानेश – धर्म भइया! तुमने कहा कि मैं जीव व पुद्गलों को चलाता हूँ। ऐसा नहीं है ,तुम चलाते नहीं हो। जीव और पुद्गल में अपनी क्रियावती शक्ति है, उस शक्ति से ही वह जब चलते हैं, तब तुम निमित्तमात्र होते हो। और जब वे अपनी क्रियावती शक्ति से रुकते हैं तब अधर्म भाई! तुम उसमें सहायक होते हो। अगर वो चलना ना चाहें या रुकना ना चाहें तो आप न तो चला सकते हो और न आप रोक सकते हो।

धर्म-अधर्म – ज्ञानेशभाई! इस परम सत्य को समझाने हेतु बहुत-बहुत धन्यवाद।

ज्ञानेश – और आकाश भाई तुम भी अपनी नेतागिरि छोड़ो सभी द्रव्य अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में ही रहते हैं, तुम तो निमित्त मात्र हो।

आकाश – ज्ञानेश भाई मैं अपनी लम्बाई-चौड़ाई के चक्कर में दूसरों की सामर्थ्य को भूल गया था। आपने सत्य स्वरूप बता दिया। धन्यवाद।

ज्ञानेश – और रही मिस्टर काल आपकी बात; तो आप भी समझने की कोशिश करो कि सभी द्रव्यों में वस्तुत्व गुण है, द्रव्यत्व गुण है इन शक्तियों से ही उनका अपना काम हमेशा अपने लिए होता रहता है अतः तुम भी घमण्ड का त्याग करो और नेता बनने का विचार छोडो।

काल – अरे ज्ञानेश भाई! हम तो नेतागिरि के चक्कर में अनादि अनंत वस्तुव्यवस्था को ही बिगाड़ने की कोशिश कर रहे थे। अब ऐसा हम स्वप्न में नहीं सोचेंगे।

ज्ञानेश – मैं तो यही कहना चाहूँगा कि भाई! आप सभी अनंत गुणों वाले हो, कोई कम-ज्यादा नहीं है। एक साथ रहते हुए, एक दूसरे के काम में निमित्त मात्र हो। एक दूसरे के कार्य के कर्ता नहीं हो। अतः नेतागिरि का प्रश्न छोड़कर अनादि से जैसे रह रहे हो वैसे ही रहो। जय जिनेन्द्र। (ज्ञानेश का प्रस्थान)

(पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश-काल विचार-विमर्श करके)

पुद्गल - हाँ तो भाई ज्ञानेश ने जो बात कही है वह बात बिल्कुल सही है। इसलिए हम सबका मत है कि जीव ज्ञानवाला है, समझदार है सबको जानता है, सुखवाला है, इसलिए जीवराजा को ही विश्व में श्रेष्ठ मान कर उसे ही नेता बनाया जाना चाहिए।

जीव - भाइयो! आपने अपनी बात कह ली; लेकिन भाई ज्ञानेश के कारण अब हमारी भी आँखें खुल गई हैं। कोई भी द्रव्य छोटा-बड़ा नहीं है तो फिर किस बात की नेतागिरि। मैं तो अब अपने स्वरूप में ही रहकर अनंत सुख को प्रगट करूँगा। मुझे अन्य किसी का नेता नहीं बनना है मैं तो अपने ही मोक्षमार्ग का नेता बनूँगा।

बोलिये अनादि-अनंत वस्तुव्यवस्था प्रतिपादक वीतराग सर्वज्ञ भगवन्तों की.....जय हो.......जय हो.......जय हो।

अनाचार बढ़ता है कब? सदाचार चुप रहता है जब।
बना इन्द्रियों का जो दास, उसका कौन करे विश्वास?
नहीं करो ऐसा व्यवहार, जो न हो स्वयं को स्वीकार।
घर में टंगे हुए जो चित्र, घोषित करते व्यक्ति चरित्र।।

6

भगवान महावीर और उनकी अहिंसा

पात्र - **1. परमात्म** - 18 वर्ष का धार्मिक युवा, **2. मोहित** - 15 वर्ष का परमात्म का छोटा भाई, **3. रोहित** - आयु 10 वर्ष परमात्म का सबसे छोटा नटखट भाई, **4. सोहित** - परमात्म का पड़ोसी, आयु 15 वर्ष।

प्रार्थना

(पात्रों या अन्य बालकों द्वारा)

इतनी शक्ति हमें देने माता मन का विश्वास कमजोर हो ना।
हम चलें नेक रस्ते पर हमसे भूलकर भी कोई भूल हो ना।।
दूर अज्ञान के हों अंधेरे, तूं हमें ज्ञान की रोशनी दे।
हर बुराई से बचते रहें हम, हमको ऐसी तूँ मोक्ष नगरी दे।।
बैर न हो किसी का किसी से, भावना मन में बदले की हो ना।।1।।
हम न सोचें हमें क्या मिला है, हम ये सोचें किया क्या है अर्पण।
फूल समता के बांटें सभी को, सबका जीवन ही बन जाये मधुवन।।
अपनी समता का जल तू बहा के कर दे पावन हरेक मन का कौना।।2।।

(महावीर जयन्ती का दिन है। एक परिवार में इस अवसर पर होने वाली प्रभातफेरी में जाने की तैयारी चल रही है।)

(रोहित – मोहित सो रहे हैं, परमात्म उन्हें प्रभात फेरी में जाने हेतु उठा रहा है)

परमात्म – अरे! रोहित–मोहित उठो भई, ये क्या अभी तक सोने का समय है ?

अरे ! हद हो गई भई जगाते–जगाते भी उठने में पसीना आता है।

(रोहित–मोहित उठकर आते हैं)

रोहित – (आँख मलते हुए) क्या है भाई साहब; क्यों हमारी नींद खराब कर रहे हो और आप इतनी जल्दी तैयार होकर कहाँ जा रहे हो ?

परमात्म – अरे! तुम लोग भूल गये कि आज महावीर जयन्ती है। हमें प्रभातफेरी में चलना है। तुम भी जल्दी तैयार होकर आओ। चलो जरा जल्दी करना।

रोहित – (आलस्य भाव से) यदि मैं नहीं जाऊँगा तो प्रभात फेरी रुक जायेगी क्या ? भैया मुझे तो नींद आ रही है मैं तो सो रहा हूँ। (सोने जाने लगता है)

परमात्म – (प्यार भरे गुस्से में) कैसे नहीं जायेगा। तुझे अभी भी नींद आ रही है। आलसी कहीं का। चलो जल्दी तैयार होकर आओ।

(सभी तैयार होकर आते हैं।)

रोहित – भइया-भइया! देखो मैं कितनी जल्दी तैयार होकर आ गया हूँ।

परमात्म – (प्यार दिखाते हुए) आखिर छोटा भाई किसका है? शाबास।

मोहित – चलो भाई साहब, अब हम प्रभात फेरी के लिए चलें। परन्तु हमें भगवान महावीर के बारे में भी तो बताओ।

परमात्म – अच्छा चलो यह ठीक है। पीले हम सोहित को भी बुला लें फिर भगवान महावीर के बारे में बतायेंगे।।

(थोड़ा चलकर सोहित को आवाज देते हैं)

रोहित – सोहित भइया! जल्दी आओ ! प्रभातफेरी में नहीं चलना है क्या?

सोहित – (घर से बाहर निकलते हुए) जयजिनेन्द्र! चलो, मैं तो बिल्कुल तैयार हूँ, चलो चलते हैं।

मोहित – हाँ भइया अब आप भगवान महावीर के बारे में बताइये।

परमात्म – मैं तुम्हें भगवान महावीर के बारे में बताता हूँ। ध्यान से सुनना।

आज से 598 ईसा पूर्व कुण्डलपुर राज्य में राजा सिद्धार्थ राज्य करते थे। उनकी रानी का नाम प्रियकारिणी त्रिशला था। वह बहुत ही धार्मिक

विचारों वाली थीं। एक बार सोते समय उन्होंने 16 स्वप्न देखे।

रोहित - भइया-भइया; आज मैंने भी स्वप्न देखा।

मोहित - अरे! चुप। बीच-बीच में नहीं बोलना चाहिए। ध्यान से भइया की बात सुनो।

रोहित - अच्छा ठीक है, बस अब चुप बिल्कुल चुप। (मुँह पर उंगली रखके चुप रहने का इशारा करता है)

मोहित - हाँ भइया! माँ ने स्वप्न देखे फिर क्या हुआ?

परमात्म - प्रात: उठकर रानी त्रिशला ने राजा सिद्धार्थ को स्वप्न बताये और उन स्वप्नों का फल पूछा।

मोहित - भइया! उन सपनों का फल महाराजा ने क्या बताया ?

परमात्म - उन्होंने बताया कि हे रानी! तुम्हारे गर्भ से अत्यन्त तेजस्वी, गुणज्ञ, सर्वांग सुन्दर, बलवान् बालक जो कि मोक्षमार्ग बताकर स्वयं भी मोक्ष जाने वाला होगा ऐसे 24 वें तीर्थंकर वर्धमान महावीर का जन्म होगा।

रोहित - अरे वाह! यह सुनकर तो रानी बहुत खुश हुई होंगी।

परमात्म - इस तरह का फल बताने पर रानी तो क्या संपूर्ण

नगर में खुशी की लहर दौड़ गई और चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन बाल तीर्थंकर के रूप में जन्म हुआ। चारों ओर आनंद ही आनंद छा गया। यहाँ तक कि कुछ क्षणों को तो नरकों में शांति छा गई। सभी नगरवासी राजा को बधाई दे रहे थे। गीत गा रहे थे, नृत्य कर रहे थे - (भजन अन्य भी गा सकते हैं)

''लिया प्रभु अवतार,

जय जय कार, जय जयकार जय जय कार।

त्रिशलानन्द कुमार जय जय कार, जय जय कार, जय जय कार।

आज खुशी है, आज खुशी है, हमें खुशी है, तुम्हें खुशी है।

खुशियां अपरम्पार, जय जय कार, जय जय कार, जय जय कार।1।।

पुष्प और रत्नों की वर्षा, इन्द्रों करते हर्षा-हर्षा

बजे दुंदुभी नाद जय जय कार, जय जय कार, जय जय कार।।2।।

प्रभु का रूप अनूप सुहाया, निरख-निरख छवि हरषाया।

कीने नेत्र हजार जय जय कार, जय जय कार, जय जय कार।।3।।

रोहित - भइया ! फिर क्या हुआ ?

परमात्म - सौधर्म इन्द्र ऐरावत हाथी लेकर कुण्डलपुर नगर में आये, बाल तीर्थंकर को पाण्डुक शिला पर ले जाकर न्हवन किया और अनेक प्रकार से जन्मकल्याणक की खुशियाँ मनाईं।

रोहित – (रूठते हुए) भइया मेरा जन्मकल्याणक क्यों नहीं मनाते?

परमात्म – पागल कहीं के। अरे! उनका तो वह जन्म स्वयं का एवं अनंत जीवों का कल्याण करने वाला था और उनका वह अंतिम जन्म था। कहा भी है न –

''तेरस दिन सित चैत, अंतिम जन्म लियो प्रभु।
नृप सिद्धार्थ निकेत, इन्द्र आय उत्सव कियो।।''

इसीलिये उनका जन्मदिन आज भी मनाते हैं।

मोहित – अच्छा भइया! यह तो उनके बचपन की बात हुई, अब कुछ उनकी शादी, बारात, रानी के बारे में भी बताओ।

परमात्म – अरे! तुम्हें ये पता नहीं कि उन्होंने तो शादी ही नहीं की तो फिर बारात और रानी तो कहाँ से होंगे

रोहित – (हंसते हुए) तो क्या भइया वह मेरे जैसे ही हमेशा खेलते–कूदते ही रहे?

परमात्म –नहीं भाई वह हमेशा ही थोड़े खेलते रहे, वह तो आत्मज्ञानी जीव थे, उसी भव से मोक्ष जाने वाले थे।

सोहित – तो क्या वह आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे ?

परमात्म – हाँ वह बालब्रह्मचारी ही रहे। एक बार वह आत्मचिंतन में लीन थे कि उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया, जिसमें उन्हें अपने पिछले अनेक भवों का ज्ञान हुआ, वह सब जानकर उन्हें संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान हुआ, उनके अंतरंग से वैराग्य रस कूट–कूट कर भरा हुआ था, वह विचार करने लगे –

भोर की स्वर्णिम छटा सम क्षणिक सब संयोग हैं।
पद्मपत्रों पर पड़े जलबिन्दु सम सब भोग हैं।।
सान्ध्य दिनकर लालिमा सम लालिमा है भाल की।
सब पर पड़ी मनहूस छाया विकट काल कराल की।।

उसी समय लौकान्तिक देव आये, उन्होंने उनके वैराग्य की अनुमोदना की। युवराज वर्धमान बारंबार अंतर में चिंतन करते जा रहे थे –

''मोहे भावे न भैया थांरो देश, रहूँगा मैं तो निजघर में।
मोहे न भावे यह महल अटारी,
झूठी लागे मोहे दुनिया सारी।
मैं तो धारूँ दिगम्बर वेश, रहूँगा मैं तो निजघर में।।
हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता।
यहाँ हमारा कोई न दिखता।
मोहे लागे यहाँ परदेश, रहूँगा मैं तो निजघर में।।

इस तरह विचार करते हुए उन्होंने वन में जाकर 'ऊँ नमः सिद्धेभ्यः' कहकर, नग्न दिगम्बर मुनि दीक्षा ले ली ।

रोहित – भइया! क्या हम भी मुनि बन सकते हैं ?

परमात्म – क्यों नहीं ? कुंदकुंद तो मात्र 11 वर्ष की आयु में मुनि बन गये थे। पर मुनि बनने से पहले स्वयं को जानना, पहिचानना आवश्यक है। स्वयं की पहिचान तत्त्व विचार से होती है, इसलिये हमें सबसे पहले निरन्तर स्वाध्याय करना जरूरी है।

सोहित – भइया! वह मुनिराज से भगवान कैसे बने ?

परमात्म – आत्मसाधना की पूर्णता होने पर 42 वर्ष की आयु में चार घातिया कर्मों का अभाव होने पर उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। वह वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये; भगवान बन गये।

रोहित – भइया! मैं भी भगवान बनूँगा।

परमात्म – क्यों नहीं! जरूर बनना। स्वभाव से तो हम भगवान ही हैं और जब हम भगवान महावीर के द्वारा बताये मार्ग पर चलेंगे तो पर्याय में भी भगवान बन जायेंगे, पूर्ण सुखी हो जायेंगे।

मोहित – तो क्या उन्होंने सुख होने का मार्ग भी बताया है ? वह क्या है?

परमात्म – सभी तीर्थंकरों की भाँति उन्होंने भी छह द्रव्य, सात तत्त्व, पंच अस्तिकाय, नव पदार्थ, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, निमित्त-उपादान, अहिंसा आदि का स्वरूप बताया। इनकी सच्ची समझ होना ही सुखी होने का उपाय है।

रोहित – अहिंसा के बारे में तो मैं भी जानता हूँ।

सोहित – अच्छा तो तुम्हीं बताओ अहिंसा के बारे में।

रोहित – जब कोई मारने से मर जावे तो हिंसा और न मरे तो अहिंसा।

सोहित – हट पगला कहीं का। हिंसा-अहिंसा का मतलब ऐसा नहीं होता है; हिंसा-अहिसा के बारे में तो मैंने पाठशाला में पढ़ा है। भइया मैं बताऊँ ?

परमात्म – हाँ-हाँ तुम बताओ।

सोहित – सुनो! किसी भी जीव को मारना, सताना या किसी का दिल दुखाना द्रव्य हिंसा है और आत्मा में माह-राग-द्वेष भावों का होना भाव हिंसा है।

परमात्म – अरे वाह! तुम तो बहुत जानते हो। पाठशाला जाने का यही फायदा है। अब यह भी बताओ कि मोह-राग-द्वेष भावों को भी हिंसा क्यों कहा ?

सोहित – अरे! बड़ी सीधी बात है, द्रव्य हिंसा में तो दूसरे का घात ही बताया है, पर भाव हिंसा में यानी कि राग–द्वेष भावों से तो हमारा ही घात होता है और यह भाव तो हम 24 घन्टे ही करते रहते हैं, इसलिये वास्तव में तो यही हिंसा है।

मोहित – पर भइया! राग माने तो.......प्रेम होता है तो क्या प्रेम करना भी हिंसा है। यह बात तो समझ में नहीं आई।

परमात्म – तुम्हारी समझ में नहीं आयी तो समझने का प्रयास करो, पर जो बात सोहित ने कही है, वह सही है। हमने ऐसा पहले कभी नहीं सुना इसलिए हमारी समझ में जल्दी से नहीं आता है।

सोहित – तो फिर भइया अब आप ही जरा इसे अच्छी तरह से समझाओ न?

परमात्म – अच्छा ध्यान से सुनो – जब भी हम राग–द्वेष करते हैं, तो उस समय अपने ज्ञान–दर्शन गुणों का घात होता है, उस समय हम अपने आपको नहीं जान सकते हैं, शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। राग–द्वेष से आकुलता ही मिलती है इसलिए यह भाव, हमारे शुद्धभावों का घात करने से हिंसा ही हैं।

रोहित – (प्रसन्नता दिखाते हुए) भइया भइया! आपने यह बात अच्छी बताई; राग हिंसा है और हिंसा पाप है

इसका मतलब है भगवान से राग करना भी पाप है तब तो मैं यह पाप कभी नहीं करूँगा। कल से मंदिर जाना बन्द।

परमात्म –(स्नेहपूर्वक) अरे नहीं भइया! तुम सही ढ़ंग से नहीं समझे। अगर मंदिर जाना बन्द करोगे, तब तो महा पाप होगा और वीतरागी होने सुखी होने की बात भी सुनने को नहीं मिलेगी। इसलिये मंदिर तो आना ही है जो मंदिर न जावे, वीतरागी देव–शास्त्र–गुरु के प्रति राग,भक्ति न रखे वह तो जैन ही नहीं है।

परन्तु यह बात भी समझना है कि जब तक राग–द्वेष के परिणाम होते हैं, तबतक भगवान ने उन्हें हिंसा ही कहा है, एकमात्र वीतरागता को ही अहिंसा कहा है, उसे ही 'अहिंसा परमो धर्मः' कहा गया है।

रोहित – अब मैं इस बात को सही समझ गया कि राग–द्वेष भावों से हमारे स्वभाव का घात होता है, इसलिए वह हिंसा ही है। पर जब तक वीतरागी न हो सके तब तक शुभराग को छोड़ने लायक मानते हुए भी, शुभभावों में रहना चाहिए अर्थात् ज्ञानी को सहज ही शुभभाव होते ही हैं।

परमात्म – हाँ भाई अब आप सही समझे।

मोहित – भइया। उनके सिद्धान्तों के बारे में और भी कुछ बताओ न!

परमात्म – (घड़ी की तरफ देखते हुए) अरे देखो! कितना समय हो गया है। अभी तो प्रभातफेरी में चलना है; उनके सिद्धान्तों को समझना है तो आज रात्रि में एक सभा आयोजित की गई है, उसमें आओ तथा रोजाना पाठशाला व प्रवचन भी सुनने आओ तो ही अच्छी तरह से समझ सकोगे।

आज तो महावीर जयन्ती है, वे तो अब सिद्ध अवस्था में हैं पर उनकी वाणी से हमें सुखी होने का रास्ता आज भी प्राप्त हो रहा है। चलो अब हम एक गीत गाते हुए प्रभातफेरी में चलें –

''वह दिन था मुबारक शुभ थी घड़ी, जब जन्में थे महावीर प्रभो।
तब नरकों में भी शान्ति पड़ी जब जन्में थे महावीर प्रभो।।
जब जन्में थे महावीर प्रभो, जब जन्में थे महावीर प्रभो।
वह दिन था मुबारक शुभ थी घड़ी, जब जन्मे थे महावीर प्रभो।।

आज क्या है – महावीर जयन्ती।

त्रिशलानन्दन वीर की जय बोलो महावीर की।

बोलो महावीर भगवान की... जय। (नारे लगाते हुए प्रस्थान)